सृष्टि का नियामक कर्म सिद्धान्त

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

सृष्टि का कर्म नियामक सिद्धांत है। सृष्टि किसे कहते हैं? यह जो ब्रहमाण्ड दिखलाई दे रहा है, सृष्टि कहलाता है। चौरासी लाख जीव योनियों का उत्पत्ति स्थान यह सृष्टि है। सृष्टि पंचभूतात्मक है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश पंचमहाभूत कहलाते हैं। जितने भी पदार्थ हैं उन सभी में इन पाँचों की सत्ता है। सृजन और संहार चलता रहता है। मरने के बाद जीव इन्हीं पंच तत्वों में विलीन हो जाता है। मनुष्य द्वारा जो किया जाता है वह कर्म है। कर्म का सम्बन्ध हमारे मन से है। हम जो कार्य करते हैं, उसका प्रभाव हमारे शरीर और आत्मा पर पड़ता है। कर्म रज आत्मा पर चिपक जाता है और आत्मा के प्रकाश को क्षीण कर देता है।

भारतीय संस्कृति में कर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार में सर्वत्र सुख–दुःख, हानि–लाभ, जीवन–मरण, दरिद्रता–सम्पन्नता, रूग्णता–स्वस्थता और बुद्धिमत्ता–अबुद्धिमत्ता आदि वैभिन्य स्पष्टरूप से दिखायी पड़ता है। यह वैभिन्य दृष्टकारणों से ही हो आवश्यक नहीं, कारण कि ऐसे बहुत सारे उदाहरण प्राप्त होते हैं कि एक माता–पिता के एक साथ जन्मे युग्म बालकों की शिक्षा–दीक्षा, लालन–पालन आदि समान होने पर भी व्यक्तिगत रूप से उनकी परिस्थितियां भिन्न–भिन्न होती हैं। जैसे कोई रुग्ण कोई स्वस्थ, कोई दरिद्र तो कोई सम्पन्न, कोई अंगहीन तो कोई सुन्दर अंगवाला। इन बातों से यह स्पष्ट है कि जन्मान्तरीय धर्माधर्मरूप अदृष्ट भी इन भोगों का कारण है।

सभी प्रकार के वैषम्य का मूलकारण कर्म ही है। कर्म से ही मनुष्य सुख–दुःख प्राप्त करता है। जीव की शुभ–अशुभ प्रवृत्ति से आकृष्ट सुख–दुःख एवं आवरण के हेतु भूत पुद्गल स्कन्ध को कर्म कहते हैं। जीव की अपनी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक शुभाशुभ क्रिया द्वारा या मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन कारणों से प्रेरित होकर रागद्वेषात्मक प्रवृत्ति से चुम्बक की तरह आकृष्ट आत्मा, जो करता है, वह कर्म कहलाता है। आत्मा और कर्म का

सम्बन्ध क्रिया के द्वारा होता है। जब कर्म आत्मा के साथ बधते हैं तो उनका फल भी भुगतना पड़ता है। इसीलिए कहा गया है कि अपना किया हुआ कर्म अपने को भुगतना पड़ता है।

कर्म दो प्रकार का माना गया है——भावकर्म और द्रव्यकर्म। रागद्वेषात्मक परिणाम अर्थात् कषाय भाव कर्म है, कार्मण जाति का पुद्गल–जड़तत्त्व विशेष, जो कषाय के कारण आत्मा के साथ मिल जाता है द्रव्यकर्म कहलाता है। जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है। जैनागमों में आठ कर्मों का उल्लेख मिलता है जिनसे बंधा हुआ जीव संसार में परिवर्तन करता है– ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ये आठ कर्म हैं। इन आठ कर्म प्रकृतियों को भी दो भागों में बांटा गया है– घातिकर्म और अघातिकर्म। जो कर्म पुद्गल आत्मा से चिपककर आत्मा के मुख्य या स्वाभाविक गुणों का घात करते हैं, उनको घातिकर्म कहते हैं। उन कर्मों का मूलोच्छेदन होने से ही आत्मा सर्वज्ञ या सर्वदर्शी बन सकता है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिकर्म कहलाते हैं। जो कर्म आत्मा के मुख्य या स्वाभाविक गुणों का घात नहीं कर पाते वे अघातिकर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म हैं। जैन दर्शन के अनुसार जब कोई कर्म किया जाता है तो उस कर्म के परमाणु आठ भागों में विभक्त हो जाते है, और आत्मा के स्वाभाविक गुणों को प्रगट नहीं होने देते। आत्मा अनन्तज्ञान सम्पन्न है। जो कर्म आत्मा की साक्षात्कार करने की शक्ति के आवरण करने में निमित्त हैं वे दर्शनावरणीय कर्म हैं। दर्शनावरणीय कर्म प्रतिहारी के समान है। जैसे प्रतिहारी राजा के दर्शन में रुकावट डालता है, वैसे ही दर्शनावरणीय कर्म आत्मा की दर्शन शक्ति को आच्छादित कर देता है।

जिन कर्मों के प्रभाव से आत्मा निजानन्द को भूलकर सांसारिक सुख–दुःख रूप फलों का अनुभव करता है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। जो आत्मा के मोहभाव के होने में अर्थात् राग, द्वेष और मिथ्यात्व भाव के होने में निमित्त है वह मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म मद्यपान करने के समान है। जिस प्रकार मद्यपान करने वाले को सुध–बुध नहीं रहती, वैसे ही मोहनीय कर्म के उदय से जीवों की तत्त्व श्रद्धा विपरीत होती है और विषयभोगों में आसक्ति रहती है।

आयुष्य कर्म के द्वारा आत्मा चारों गतियों में—नैरयिक, तिर्यक्, मनुष्य और देव में भ्रमण करता रहता है। आयुष्यकर्म बेड़ी के समान है। जिस प्रकार काठ की बेड़ी में पड़ा हुआ मनुष्य उसको तोड़े बिना निकल नहीं सकता, वैसे ही आयुष्यकर्म को भोगे बिना जीव एक भव से दूसरे भव में नहीं जा सकता। नामकर्म के प्रभाव से जीव शुभ या अशुभ शरीर की रचना, प्रभाव आदि प्राप्त करता है, उसे नामकर्म कहते हैं। गोत्रकर्म के द्वारा जाति, कुल आदि की उच्चता, निम्नता होती है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं। अन्तरायकर्म के कारण आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य की शक्ति में विघ्न—बाधाएं या रुकावटें आएं, पदार्थ पास में होते हुए भी उनका भोगोपभोग न हो सके, उसका नाम अन्तराय कर्म है। इस प्रकार कर्म मीमांसा का मानव जीवन में बहुत अधिक महत्व है।